प्रवचन नं. ११०　　　　गाथा ३८　　　　दिनाङ्क १७-१०-१९७८ मंगलवार

आसोज कृष्ण १,　　वीर निर्वाण संवत् २५०४

३८ गाथा। यहाँ तक आया है। **परमार्थ से मैं सदा ही अरूपी हूँ।** यहाँ आया है न? मैं एक हूँ, इसकी व्याख्या आ गयी; शुद्ध हूँ, इसकी आ गयी; ज्ञान-दर्शन मैं हूँ, (इसकी) आ गयी। सदा ही अरूपी हूँ। अब यह कहते हैं।

अनादि का अप्रतिबुद्ध अज्ञानी था, जिसे आत्मा का ज्ञानस्वरूप क्या है — इसका बिल्कुल पता नहीं था और विरोध / अज्ञान था। आहाहा! उसे भी गुरु द्वारा यह समझाने पर, यह बारम्बार उसका रटन करते हुए, वह अन्दर से समझ गया। अरे! मैं तो परमेश्वर स्वरूप हूँ। जैसे मुट्ठी में सोना हो और भूल जाये, वैसे भगवान अन्दर है, उसे मैं भूल गया था। आहाहा! वह मैंने अब याद किया कि ओहो! चैतन्यस्वरूप परमात्मस्वरूप भगवान परमेश्वर आत्मा वह मैं — ऐसा एक और शुद्ध (हूँ)।

इस प्रकार सबसे भिन्न.... वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का ज्ञान होने पर भी उनसे वह

भिन्न (है ।) वह चीज यहाँ नहीं आती तथा इसका ज्ञान चीज में नहीं जाता। वे रूपी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श को अपनी संवेदन शक्ति से जानने पर भी, आत्मा उनरूप नहीं होता और वह ज्ञेय, ज्ञान में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा धर्मी जीव अपने लिये ऐसा निर्णय करके अनुभव करता है, यह कहते हैं। आहाहा! उसे - यहाँ तो तीनों को साथ लिया है न - दर्शन, ज्ञान और चारित्र ? आहाहा! आत्मा शुद्ध चैतन्य परमेश्वररूप का ज्ञान, उसकी प्रतीति और उसमें आचरणरूप रमणता ये तीन हुए। ये जीव की पूर्णता को प्राप्त हुआ। आहाहा! जैसा इसका पूर्ण स्वरूप है, वैसा ही प्रतीति ज्ञान-रमणता में आया। आहाहा!

इस प्रकार सबसे भिन्न ऐसे स्वरूप का अनुभव करता हुआ.... पर से बिल्कुल भिन्न, ऐसा मैं आत्मा, शुद्ध चैतन्यघन... आहाहा! उसे — स्वरूप को अनुभव करता हुआ, पर्याय में प्रकाश में उसे अनुभव करता हुआ, आहाहा! मेरी जो पर्याय है, उसमें उस स्वरूप को अनुभव करता हुआ। आहाहा! उसका नाम आत्मा जाना, माना और अनुभव किया - ऐसी बात है।

यद्यपि अनुभव करता हुआ यह मैं मेरे स्वरूप को शुद्ध चैतन्य, राग से भिन्न, रूपी चीज को-रूपी को-जानने पर भी भिन्न और राग को जानने पर भी राग से भिन्न — ऐसा जो मेरा भगवान स्वभाव, उसे अनुसरण करके अनुभव करता हुआ, सन्मुख होकर — ऐसा शब्द है न ? भाई! अभिगच्छदि... नहीं! अभिगच्छदि... अभिगच्छदि... शब्द है पहले।

शुद्ध चैतन्य द्रव्य वस्तु को मैं, मेरी पर्याय में परसन्मुखता की जो धरा थी, वह मिथ्यात्व था। उस ज्ञान की वर्तमान पर्याय को अभिगच्छदि - स्वरूप के सन्मुख की है। कहाँ है शब्द अभिगच्छदि ? कहीं आया तो था, अब वह तो पहले आया था, अभिगच्छदि (श्रोता : नौवें में)। ९ वें में न, अभिगच्छदि। (जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तुं केवलं सुद्धं), हाँ, बस यह। गाथा ९ वीं का पहला पद, देखो! ९ वीं गाथा। जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तुं केवलं सुद्धं - है ? क्या कहा ? मेरे भाव श्रुतज्ञान द्वारा अभिगच्छदि- वस्तु के सन्मुख होकर... आहाहा! अप्पाणमिणंतुं यह आत्मा केवल शुद्ध है — ऐसा मैं जानता हूँ। आहाहा! अभिगच्छदि शब्द है न ?

छठवीं गाथा में, प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं — ऐसा मैं ज्ञायक हूँ। ग्यारहवीं में भूतार्थ

ज्ञायक, भूतार्थ-सत्यार्थ वह मैं हूँ, उसका आश्रय... यहाँ ऐसा कहा कि मेरे भावश्रुतज्ञान द्वारा भगवान के समीप होकर मैं अनुभव करता हूँ। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं, स्वरूप का अनुभव करता हुआ,... यह तो इसके ऊपर जरा (वजन देना है)। जो वस्तु है पर से भिन्न राग से, रूपी से (भिन्न) ऐसा पूर्ण स्वरूप आनन्द प्रभु को मैं मेरे स्वरूप का अनुभव करता हुआ 'यह, यह' प्रत्यक्ष है, कहते हैं। ज्ञान की पर्याय में 'यह' 'मैं' **प्रतापवन्त हूँ....** आहाहा! वह शक्ति निकाली (कही है) न प्रभुत्व? प्रभुत्व शक्ति, वह इसमें से। वहाँ ऐसा कि जिसका प्रताप अखण्डित है, ऐसा स्वतन्त्रता से शोभायमान मेरा प्रभु, जिसका प्रताप अखण्ड है, जिसे कोई खण्ड कर सके — ऐसी ताकत किसी में नहीं है। आहाहा!

देखो! जिसका - प्रभु का प्रताप,... उसमें प्रभुत्व नाम का गुण है। भगवान आत्मा में ईश्वर-प्रभुता नाम का गुण है। उस गुण के धारक को भगवान आत्मा को जाना, वह कहता है कि मेरा प्रताप अखण्डित है। इस मेरे प्रताप को स्वतन्त्रता से शोभायमानपना है। आहाहा! ऐसा मैं आत्मा प्रतापवन्त रहा — ऐसा कहते हैं। देखा! आहाहा! **अनुभव करता हुआ मैं प्रतापवंत हूँ।...** आहाहा! अलौकिक बातें हैं बापू! समयसार ने तो केवली का विरह भुलाया है। आहाहा! धीरे से, शान्ति से, सुने-समझे तो इसे पता पड़े। आहाहा!

इस प्रकार मैं '**दंसणणाणमइओ सदारूवी।**' मैं एक शुद्ध ऐसा पर से सर्वथा पृथक्, ऐसे स्वरूप का अनुभव करता हुआ **सबसे भिन्न ऐसे स्वरूप का अनुभव करता हुआ....** आहाहा! यह 'मैं' यह ज्ञायक चैतन्य ज्योति प्रभू... आहाहा! जिसकी ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष हुआ। आहाहा! समझ में आया?

यह मैं आत्मा, यह मैं, आहाहा! प्रतापवन्त रहा। 'यह' 'मैं' मेरे अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभायमान रहा। आहाहा! देखो! यह आत्मा का ज्ञान! आहाहा! यह मैं भगवान आत्मा, इन **सबसे भिन्न ऐसे स्वरूप का अनुभव करता हुआ मैं प्रतापवंत हूँ।...** मेरा (स्वभाव) प्रतापवन्त मैं हूँ। आहाहा! मेरे प्रताप को कोई खण्डन नहीं कर सकता। ऐसा मैं स्वतन्त्रता से शोभायमान... आहाहा! ऐसा मैं प्रतापवन्त यह रहा, इतना लिया। अब **इस प्रकार प्रतापवंत वर्तते हुए ऐसे मुझे,....** आहाहा!

यह पंचम काल के मुनि! वे अपनी दशा वर्णन करते हुए जगत को इस प्रकार का

उपदेश देते हैं। आहाहा! दिगम्बर मुनि हैं! अन्तर अनुभव में दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभव करते हैं। मेरे स्वरूप को मैं अनुभव करता हूँ। यह शुभयोग होगा? प्रभु... प्रभु... प्रभु... क्या करता है नाथ?

शुभयोग से भी मैं सर्वथा पृथक्... आहाहा! क्रमरूप और अक्रमरूप में नहीं आया था? और तत्त्व के नौ भेद, उनसे भी पृथक्। है? आहाहा! मेरा प्रभु पर से पृथक् — ऐसे मेरे स्वरूप को, धर्मी ऐसा जानता है, अनुभव करता है। आहाहा! कि यह मैं प्रतापवन्त रहा, यह मैं प्रतापवन्त रहा। आहाहा! मेरे प्रताप को कोई खण्डित कर सके — ऐसी किसी की जगत में ताकत नहीं है। आहाहा! मेरे प्रताप की स्वतन्त्रता से शोभायमान... उसकी स्वतन्त्रता की अशोभा कोई कर सके? आहाहा! गजब है टीका! आहाहा! वस्तु को स्पष्ट व्यक्त करने की सिद्धि! आहाहा! ऐसे यह मैं प्रतापवन्त रहा अर्थात् अस्ति की बात की।

अब **इस प्रकार प्रतापवंत वर्तते हुए ऐसे मुझे,....** इस प्रकार मैं प्रतापवन्त वर्तता हूँ, ऐसे मुझे। आहाहा! **यद्यपि (मुझसे) बाह्य अनेक प्रकार की....** पहले कहा था न, कि सदा ही पृथक्, सर्व से पृथक् ऐसे मेरे स्वरूप को अनुभव करता हुआ... अब मेरे ऐसे स्वरूप से बाहर... है न? **अनेक प्रकार की स्वरूप-सम्पदा....** यह भी अनेक प्रकार की स्वरूप की सम्पदावाला जगत है। अनन्त आत्माएँ, अनन्त रजकण हों जगत में, कहते हैं। आहाहा! **अनेक प्रकार की स्वरूप-सम्पदा के द्वारा समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं....** सभी अनन्त द्रव्य हैं, अस्ति रखते हैं, स्फुरायमान हैं, प्रगट हैं। आहाहा!

अनन्त आत्माएँ, अनन्त रजकण, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्तिकाय, और आकाश, यह मेरे स्वरूप से, पृथक् स्वरूप की सम्पदा को धारण करते हुए... आहाहा! आहाहा! ये भी अस्तिरूप बाह्य पदार्थ अपनी सम्पदा द्वारा शोभायमानपने रहे हुए हैं। आहाहा! उन्हें कोई मेरी जरूरत नहीं, उनकी मुझे जरूरत नहीं। आहाहा!

ऐसा मेरा भगवान प्रतापवन्त रहता हुआ, प्रतापवन्त वर्तता हुआ। आहाहा! **मुझे, यद्यपि (मुझसे) बाह्य अनेक प्रकार की स्वरूप-सम्पदा....** उनकी स्वरूप की लक्ष्मी-परमाणु के स्वरूप की लक्ष्मी, आत्मा के स्वरूप की लक्ष्मी, सिद्धों के स्वरूप की लक्ष्मी, अनन्त निगोद के जीवों के स्वरूप की लक्ष्मी, उसके **(द्वारा) समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं....** उनकी सम्पदा द्वारा वे स्फुरायमान हैं। आहाहा!

मेरे द्वारा वे नहीं, तथा ईश्वर कर्ता है, इसलिए वे शोभायमान हैं, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे भी अपने स्वरूप की सम्पदा द्वारा... आहाहा! समस्त **समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं तथापि, कोई भी परद्रव्य परमाणुमात्र भी मुझरूप भासते नहीं,** कहते हैं। आहाहा! धर्मी जीव को, सम्यग्दृष्टि जीव को। आहाहा! मेरे स्वरूप के प्रतापवन्तपने रहा, और प्रतापवन्त वर्तते ऐसे मुझे, बाहर के समस्त परद्रव्य उनकी सम्पदा से स्फुरायमान हैं, अस्ति है; जैसे मैं स्वयं अस्ति हूँ, वैसे वे भी अस्ति हैं, तथापि आहाहा! **कोई भी परद्रव्य...** कोई भी परद्रव्य — सिद्ध हो या निगोद हो या रजकण हो या अचेतन स्कन्ध हो। आहाहा! स्त्री हो या उसका शरीर हो या पंच परमेष्ठी हो। आहाहा! वे उनके स्वरूप की सम्पदा से स्फुरायमान हैं। आहाहा!

मुझे — मैं एक आत्मा भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, आहाहा! मेरी स्वरूप की सम्पदा को अनुभव करते हुए, सभी सम्पदा से स्फुरायमान वे तत्त्व हैं, उनमें कोई भी परद्रव्य परमाणुमात्र भी, एक राग का कण और रजकण का पदार्थ... आहाहा! मुझरूप भासित नहीं होता।

देखो! यह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा के आत्मा के अनुभव के लक्षण! आहाहा! यहाँ भले तीनों ही साथ में लिये हैं। तीनों साथ में, सम्यग्दर्शन में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र में तीनों शामिल हैं, यहाँ पूर्ण लिया है। समझ में आया? आहाहा!

धर्मी जीव, पहले अज्ञानी था। आहाहा! उसे गुरु ने समझाने पर वह अपने रटन में गया-आया और उसमें स्वरूप की सम्पदा का अनुभव किया। आहाहा! अरे! मैं तो मेरे परमेश्वर को भूल गया था। आहाहा! मेरा प्रभु तो पूर्णानन्द से अन्दर विराजमान है। आहाहा! उसे मैंने याद करके, स्वरूप की स्मृति करके। आहाहा! याद किया कब हो? कि उसका अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा हुई हो तब याद किया हो। आहाहा! ऐसा जो मैं, उसे (ऐसे मुझे) यद्यपि मुझसे बाहर परमाणु आदि अनेक प्रकार की स्वरूप की सम्पदा द्वारा प्रकाशित हैं परन्तु मुझरूप (मुझे) भासित नहीं होते। **कोई भी परद्रव्य परमाणुमात्र भी मुझरूप भासते नहीं....** आहाहा! ३८ गाथा! गजब काम है!

मुझरूप भासते नहीं कि जो मुझे भावकरूप.... कर्म भावक और उसके

निमित्त से होनेवाला विकार भाव्य, वह मेरे हैं, यह अब मुझे भासित नहीं होता। आहाहा! आहाहा! देखो यह सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी और आचरणवाला! आहाहा! यह इन पंचम काल के सन्तों ने, पंचम काल के श्रोताओं को कहकर... श्रोता जाग उठा उसकी बात है। हें! आहाहा! विशेष तो अब आता है।

मुझरूप भासते नहीं कि जो मुझे भावकरूप तथा ज्ञेयरूप से मेरे साथ एक होकर.... यह भावकरूप नहीं और ज्ञेयरूप नहीं। ज्ञेय है परन्तु मुझरूप भासे, ये भगवान हैं वे मेरे हैं — ऐसा भासे, अब ऐसा है नहीं — ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अमृत बरस्या रे पंचम कालमां! ऐसी बात कहाँ है प्रभु! आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य हैं न! आहाहा! अभी तो अधिक आता है – अलौकिक बातें! आहाहा! **मुझे भावकरूप....** जिसे आत्मा सम्यग्दर्शन में भासित हुआ, सम्यग्ज्ञान में आत्मा भासित हुआ... आत्मा पूर्णानन्द का नाथ! आहाहा! वह समकिती ऐसा कहता है कि मेरे स्वरूप को अनुभव करता हुआ, यह मैं प्रतापवन्त रहा। मेरे प्रतापवन्त वर्तते ऐसे मुझे, समस्त परद्रव्यों में कोई भी चीज मेरी है — ऐसा मुझे भासित नहीं होता। आहाहा! पंच परमेष्ठी हों तो भी वे मेरे हैं — ऐसा मुझे भासित नहीं होता, कहते हैं। आहाहा! यह तो ठीक, अभी आता है।

भावकरूप तथा ज्ञेयरूप से मेरे साथ एक होकर पुनः मोह उत्पन्न करे;... आहाहा! मुझे जो मोह का–मिथ्यात्व का नाश हुआ है, वह फिर से अब मोह आवे, यह मुझे अब नहीं रहा। आहाहा! यह पंचम काल के सन्त और श्रोता ऐसे होते हैं — ऐसा कहते हैं। गजब बात करते हैं प्रभु! आहाहा! पंचम काल के सन्त हैं, दिगम्बर सन्त कहते हैं। हमने जो इस मोह का नाश किया, वह फिर से उत्पन्न नहीं होगा... परन्तु प्रभु तुम केवली हो? तुम्हें केवलज्ञान है? तुम केवली के पास गये भी नहीं, अभी कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे। आहाहा!

मेरा नाथ अन्दर परमेश्वर विराजता है और मैं वहाँ गया था। आहाहा! और मेरी पुकार है। जगजाहिर पुकार है कि मुझे जो इस मिथ्यात्व का–मोह का नाश हुआ, भले चारित्र से अस्थिर होऊँगा, दर्शन–ज्ञान–चारित्र से परिणमित हुआ है, इसलिए स्वर्ग में जायेंगे इस कारण चारित्र से अस्थिर होंगे परन्तु जो मोह का नाश हुआ है, वह फिर से होगा, यह नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रोता – अप्रतिहतभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री – अप्रतिहतभाव है बापू! आहाहा! आहाहा!

श्रोता – अब पड़ने की बात नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री – द्रव्य क्या पड़े? और जिसकी दृष्टि द्रव्य की हुई, वह क्या पड़े? ऐसा कहते हैं। आहाहा! हमें तो जो कोई मिथ्यात्व का-मोह का नाश किया और जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान उत्पन्न किया, वह मोह फिर से उत्पन्न होगा? हम पंचम काल के सन्त कहते हैं, और सन्त के श्रोताओं को अनुभव हुआ, वह ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसकी बात ली है न? अनादि (अज्ञानी था वह) समझा, उसकी बात है न? आहाहा!

प्रभु! परन्तु तुम्हें केवलज्ञान भी नहीं और इतना अधिक जोर? कि हम अब आत्मज्ञान पाये हैं, अनुभव हुआ है और मिथ्यात्व का नाश किया है, वह मिथ्यात्व अब हमें होनेवाला नहीं है। आहाहा!

अब हम सादि-अनन्त सम्यग्दर्शन में रहनेवाले हैं। आहाहा! आहाहा! गजब काम किया है! मुनि स्वयं तो कहते हैं परन्तु जिसे समझ में आया वह (श्रोता) ऐसा कहता है। ऐसा है न भाई! आहाहा! इस पंचम काल का श्रोता। आहाहा! जिसे इस गुरुगम से यह वाणी मिली... आहाहा! और वह समझा। आहाहा! वह ऐसा कहता है कि हम तो यह प्रतापवन्त रहे और प्रतापवन्त वर्तते मुझे कोई मेरे प्रताप को कोई मोह उत्पन्न करके खण्ड करे ऐसा अब नहीं है। फिर से मोह उत्पन्न हो, यह मुझे है ही नहीं। आहाहा! ओहोहो! हमें जो दृष्टि और दृष्टि का विषय मिला, वह दृष्टि अब गिरे, तीन काल में नहीं, कहते हैं। आहाहा! अप्रतिहत! आहाहा! यह लोग कहे — पाँचवाँ काल ऐसा है और उसमें शुभयोग ही होता है... अरे प्रभु! क्या करता है भाई!

श्रोता – अभी शुद्ध उपयोग नहीं होता, पाँचवें काल में शुभभाव से धर्म होता है, शुभ से ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – उसे पता नहीं, और पता नहीं इसे। आहाहा! भाई! तेरी स्वरूप की सम्पत्ति का प्रभु, आहाहा! पता नहीं, इस कारण पंचम काल में शुभयोग ही होता है...

प्रभु ! यह क्या कहते हैं ये मुनि ? अरे ! मुनि तो ठीक, परन्तु उन्हें सुननेवाले ऐसे होते हैं – ऐसा कहते हैं। आहाहा !

श्रोता – श्रोता भी ऐसे हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री – आहाहा ! ऐसे ही श्रोता थे और हमारी वाणी 'यह है' और जिसके कान में पड़े... और जो समझे, वह भी अप्रतिहतवाला जीव है। ले ! ऐसा कहते हैं। आहाहा ! प्रभु ! आहाहा ! ऐसी बातें हैं बापू ! जगत् के साथ मेल मिलना बहुत कठिन भाई !

श्रोता – दीपावली के दिनों में तो ऐसा ही होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री – ऐसा ही होवे, बापू ! सत्य बात है। आहाहा ! जहाँ अन्दर से झपकारा जगा प्रभु ! आहाहा !

श्रोता – प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश...

पूज्य गुरुदेवश्री – प्रकाश का पुंज जहाँ जगा अन्दर प्रकाश। कहते हैं (कि) अब हम वापस गिरेंगे और हमें मिथ्यात्व फिर से उत्पन्न होगा, ऐसा हमारे नहीं रहा। हम पंचम काल के श्रोता और पंचम काल के गुरु ! आहाहा ! पण्डितजी ! आहाहा ! यह तो समझा वह ऐसा कहता है न ? '**अहमेक्को खलु सुद्धो**'। आहाहा !

प्रभु ! आहाहा ! और पाँचवीं गाथा में ऐसा कहा न प्रभु ने – कुन्दकुन्दाचार्य ने '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं**' आहाहा ! अन्तर के अनुभव से प्रमाण करना प्रभु ! आहाहा ! भगवान... भगवान... भगवान... सब विराजते हैं आहाहा ! कहते हैं। आहाहा !

भगवान को पहचानकर स्वीकार करना। आहाहा ! पाटनीजी ! देखो ! यह बात नहीं सुनी कहीं, यह तो स्वयं ही कहते हैं न भाई ! बापू ! ऐसी बात है भाई ! आहाहा ! आहाहा ! हमारा जो मिथ्यात्व-अनन्त संसार... आहाहा ! यह गया, वह गया अब, कहते हैं। आहाहा !

श्रोता – जल गया वह वापस आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री – आहाहा ! ऐ रतिभाई ? यह रति अन्दर में उत्पन्न हुई, कहते हैं। वह अब जानेवाली नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहाहा ! प्रभु, प्रभु ! आहाहा !

यह मोह... यह गजब किया है न? मेरे साथ ज्ञेय होकर, ज्ञेय पर है न, वे मेरे होकर भावकभाव से मेरे होकर, एक होकर फिर मोह उत्पन्न करे, यह मुझे नहीं रहा। आहाहा!

क्योंकि निजरस से ही.... आहाहा! मिथ्यात्व, मोह को क्यों उत्पन्न न करे? कि मेरे निजरस से — आत्मा के आनन्द के रस से... आहाहा! मेरी निजशक्ति की सामर्थ्य से, मेरा भगवान निजरस की सामर्थ्य से, आहाहा! **मोह को मूल से उखाड़कर....** मोह को दबाया है-उपशम किया है — ऐसा भी नहीं। यहाँ तो **मोह को मूल से उखाड़कर....** आहाहा! जैसे गधा मूल से उखाड़कर खाता है, वैसे ज्ञानी, राग को मिथ्यात्व को मूल से उखाड़ डालता है। आहाहा! आहा! गजब गाथा है। क्योंकि मैंने मेरे आत्मा के रस से - स्वभाव के रस की सामर्थ्य से मोह को, **निज रस से ही....** ऐसा कहा है। देखा? कोई कर्म मन्द पड़ा और अमुक हुआ, ऐसा नहीं परन्तु मैंने मेरे निजरस से ही... आहाहा! मेरा भगवान आत्मा, निजरस — आनन्द के रस से, मेरी सामर्थ्य से-ऐसा कहते हैं। निजरस से 'ही', दूसरा कोई अन्दर आशय - राग नहीं। आहा! आहाहा! **मोह को मूल से उखाड़कर....** मूल में से खोद निकालकर। आहाहा! मूल तोड़ दिया है, कहते हैं। **पुनः अंकुरित न हो....** आहाहा! आहाहा!

ओहोहो! क्या समयसार के कर्ता! क्या उसके टीकाकार!! क्या उसके श्रोता!!! आहाहा! यहाँ उसकी व्याख्या है न भाई! जिसे सुनाया है, वह समझा है, वह ऐसा कहता है कि, आहाहा! **मेरे निजरस से ही...** मेरा वीतराग स्वभावरस, आहाहा! पूर्ण स्वभाव में सावधानी के रस से ही मोह को मूल से उखाड़ दिया। आहाहा! मोह को दबाया, उपशम किया — ऐसा भी नहीं। आहाहा! ओहोहो! अरे कुन्दकुन्दाचार्य! अमृतचन्द्राचार्य! चलते सिद्ध! और इस भाव से सिद्ध होनेवाले!! आहाहा!

मोह को मूल से उखाड़कर - पुनः अंकुरित न हो.... आहाहा! मिथ्यात्व का अंकुर न उपजे, अंकुर जरा भी न उपजे। आहाहा! पूर्ण तो नहीं, आहाहा! परन्तु मिथ्यात्व का अंकुर भी जरा भी न उपजे। आहाहा! **इस प्रकार नाश करके,...** आहाहा! गजब किया है न? भगवान को भगवान का साक्षात्कार अन्तर में हुआ, वह कहते हैं, अब जाये नहीं। आहाहा! मेरा नाथ पूर्णानन्द का प्रभु का जहाँ साक्षात्कार हुआ, अब वियोग नहीं होगा, कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

पुनः अंकुरित न हो.... देखा! **'स्वरसत एवापुनः प्रादुर्भावाय समूलं मोहमुन्मूल्यं'** - ऐसा है न? मूल सहित मोह को उन्मूल्यं - मूल से उखाड़ दिया। आहा! **महतो 'ज्ञानोद्योतस्य प्रस्फुरितत्त्वात्' पुनः अंकुरित न हो इस प्रकार नाश करके, महान ज्ञानप्रकाश....** महान ज्ञानप्रकाश, चैतन्यज्योति जलहल ज्योति, जलहल ज्योति... शीतल चन्द्र प्रकाश का ऐसा मेरा प्रभु चन्द्र, आहाहा! उसका ज्ञानप्रकाश। **महान ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है।** आहाहा! देखो! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं — दिगम्बरों के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। यह कहना चाहते हैं। आहाहा! श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल हो गया। बहुत कठिन काम, दुःख लगे दूसरे को, क्या हो? अरे! यह एक कड़ी है, ऐसे बत्तीस सूत्रों में यह बात मिले ऐसी नहीं है। आहाहा!

श्रोता - बत्तीस और तेरह - पैंतालीस में भी नहीं मिलती!

पूज्य गुरुदेवश्री - पैंतालीस तो छोटा-साधारण, यह बत्तीस और सब देखे हैं। ७६ के साल में ये ४५ सूत्र पाँच महीने में देखे थे। ७६, ७६ (संवत् १९७६)।

श्रोता - ५८ वर्ष हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री - ५८ वर्ष पहले। बत्तीस सूत्र और इनके तेरह सूत्र, ४५ सूत्र और उनकी टीकाएँ पाँच महीने में, चातुर्मास दामनगर में था। पाँच महीने में ४५ सूत्र पढ़े थे। यहाँ तो एक ही धन्धा किया है न! ५८ वर्ष पहले... गजरथ पण्णित्ति - सूर्य पण्णत्ति सब पढ़े थे।

यह बात... आहाहा! (विक्रम संवत्) ७८ में समयसार हाथ में आया, आया और अन्दर से कहा, आहाहा! सेठ सम्प्रदाय का आग्रही था, परन्तु उस समय तो (हम स्थानकवासी सम्प्रदाय में) थे न! कहा - सेठ! यह पुस्तक अशरीरी है, सिद्ध होने को और अशरीरी होने को-शरीररहित होने को यह पुस्तक है, कहा, पाटनीजी! ७८ (विक्रम संवत् १९७८) दामनगर, दामोदर सेठ थे और अभी पैसे बढ़ गये परन्तु तब तो साठ वर्ष पहले दस लाख, दस लाख रुपये और चालीस हजार की आमदनी और दृष्टि बहुत विपरीत थी परन्तु उस समय तो उसमें था, इसलिए वह नहीं लगा। आहाहा! इसकी एक कड़ी, ३८वीं

गाथा की (एक कड़ी) आहाहा! बारह अंग में जो कहना है 'अनुभूति' यह उसकी बात यहाँ है। आहाहा!

मोह का 'अंकुर' शब्द है आहा! है न? आहाहा! है न! आहाहा! **'स्वरसत' एवापुनः प्रादुर्भावाय समूलं मोहमुन्मूल्य** - ऐसे मूल में से मोह का उन्मूलं आहाहा! फेंक दिया है या नाश कर दिया। आहाहा! मेरा प्रभु ज्ञानस्वरूपी चैतन्य-ज्योति जलहल ज्योति का प्रकाश मुझे हुआ है, कहते हैं। आहाहा! अरे! तुम पंचम काल के जीव, भगवान तो नहीं यहाँ न, भगवान विराजते हैं वहाँ महाविदेह में विराजते हैं, प्रभु भगवान सीमन्धर भगवान! बापू! हमारा भगवान हमारे पास है, यह हमारी पुकार है, कहते हैं। पाव घण्टा है। आहाहा! आहाहा!

इस प्रकार नाश करके, महान ज्ञानप्रकाश.... महान ज्ञानप्रकाश! द्रव्यस्वभाव का जो ज्ञानस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव महान ज्ञानप्रकाश, आहाहा! **मुझे प्रगट हुआ है।** वाह प्रभु! ३८ गाथा में तो हद कर दी है!

श्रोता - जीव अधिकार पूरा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ पूरा किया न... जीव अधिकार पूरा हो गया। जीव का अधिकार आ गया। उसका जो अधिकार था, उतना आ गया। आहाहा!

श्रोता - आत्मा का अनुभव हो, तब अधिकार पूरा होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री - अरे! लोग कहाँ फँसे हैं - बाहर की क्रिया, यह व्रत करो और अपवास करो और तप करो और... अरे! यह तो राग की क्रिया है, आस्रव है। वहाँ कहाँ धर्म था। अरे भगवान! जहाँ भगवान (निजात्मा) पड़ा है, वहाँ तू एक बार देख न! आहाहा! धर्मी ऐसा भगवान, उसमें अनन्त-अनन्त धर्मस्वभाव हैं। ऐसे स्वभाव के सन्मुख देख न, आहाहा! तुझे धर्म प्रगट होगा। यह धर्म ऐसा प्रगट होगा, आहाहा! कि पुनः मिथ्यात्व नहीं आवे - ऐसा प्रगट होगा। आहाहा!

उन्मूलन नहीं, इसलिए अंकुर शब्द अन्दर से निकाला। इसमें अन्दर अंकुर शब्द नहीं है।

श्रोता – प्रादुर्भाव कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – प्रादुर्भाव, बस इतना, फिर इसका अर्थ किया। आहाहा! कहो, यह... ऐसा सर्व से पृथक्, ऐसा पाँच लाईन में इतना सब भरा है। आहाहा!

आचार्य, मुनि स्वयं ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त, संवत् ४९ (में) भगवान त्रिलोकनाथ सीमन्धर प्रभु विराजमान हैं, महाविदेह में, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वे तो कहते हैं परन्तु यह तो उनके टीकाकार पुकार करते हैं, आहाहा! अरे! टीकाकार कहते हैं कि हमने जिससे कहा उसकी पुकार 'यह' है। भले ही वह भगवान के पास न गया हो। आहाहा! परन्तु उसका भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके पास वह गया है न? आहाहा! कहो, अजितभाई! इस पैसे-वैसे में नहीं यह कुछ, धूल में नहीं वहाँ। यह है माल।

श्रोता – इसलिए तो ये यहाँ आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – आहाहा! कठिन लगता है, लोगों को बाह्य प्रवृत्ति में चढ़ा दिया है न? उपवास करो, व्रत करो, तप करो और अपवास, ये अब राग की क्रियाओं में चढ़ा दिया, धर्म एक ओर रह गया। आहाहा!

श्रोता – अजैन को जैन मनवा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री – अजैनपने में जैन (पना) माना है। आहाहा!

यह तो वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ! इन परमेश्वर ऐसा ही – आत्मा का पूर्ण वीतरागस्वरूप परमेश्वर, उसे पर्याय में जहाँ उसका भान होता है, तब कहता है कि यह जो मेरी पर्याय जो निर्मल प्रगट हुई; अब मुझे मिथ्यात्व का उदय हो और मलिन हो, मुझे ऐसा रहा नहीं। गिरनेवाले, गिरे — ऐसा शास्त्र में लिखा है, आता है या नहीं? 'शुद्धनय परिच्युता' यह तो जानने के लिये है, मेरे लिये यह नहीं... आहाहा! आस्रव (अधिकार) में आता है। शुद्धनय 'परिच्युता' (परिच्युता) नय परिच्युता है? नय का अर्थ शुद्धनय, क्योंकि नय वही नय है; व्यवहार (नय) तो कथनमात्र नय है। आहाहा! नय है, उसका विषय है, परन्तु वह तो साधारण-कथनमात्र! नय परिच्युता का अर्थ ही ऐसा

किया। पाठ तो नय है मात्र, उसका अर्थ ऐसा किया कि 'शुद्धनय परिच्युता', नय ही उसे कहते हैं। आहाहा!

जो शुद्धभगवान पूर्णानन्द का आश्रय लिया है, ऐसा जो शुद्धनय, उससे जो च्युत होता है, यह तो जगत को ज्ञान कराया है। यहाँ तो कहते हैं कि जो... आहाहा! जिसने शुद्धनय का अन्तरआश्रय लिया और जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि प्रगट हुए, वह अब मिथ्यात्व को प्राप्त हो या गिरे — ऐसा रहा नहीं। आहाहा! गजब बात है।

महान ज्ञानप्रकाश.... अर्थात्? आहाहा! शास्त्रज्ञान तो अनन्त बार हुआ था, ग्यारह अंग और नौ (पूर्व का) शास्त्रज्ञान, वह नहीं; यह तो महान ज्ञान, ज्ञान का भण्डार/सागर प्रभु, उसमें से ज्ञान प्रगट हुआ है। आहाहा! मेरी पर्याय में महान ज्ञान परमात्मस्वरूप जो प्रगट आ गया है। आहाहा!

अब इसमें वाद-विवाद करे, वह कहाँ पार पड़े ऐसा है, भाई!

श्रोता - इसीलिए तो कुन्दकुन्दाचार्य ने वाद-विवाद से इंकार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री - इंकार किया है। अन्य कहते हैं तुम इंकार करते हो तो तुम्हें आता नहीं, तुम पीछे हट गये, इसलिए तुम इंकार करते हो, ऐसा कहते हैं। कहे बेचारे कहे उनकी... और तुम चर्चा करने आओ, भाई! चर्चा तो हो गयी है, यहाँ खानिया में, वहाँ अधूरी रही है अन्तिम हमें पूछना चाहिए, वह बाकी रख दिया है, तुमने पूछा उसका जवाब हमारा अन्त का आया, अरे प्रभु! यह करने से पार नहीं पड़ता बापू!

यह चीज, वह कहाँ भाई? यह शास्त्र के पठन से भी वह मिले ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या हो? **महान ज्ञानप्रकाश मुझे....** जीव अधिकार का अन्तिम साराँश... जीव का जैसा अधिकारपना था, वैसा प्रगट हुआ, यह जीव अधिकार पूरा हुआ। आहाहा!

भावार्थ : आत्मा अनादि काल से मोह के उदय से अज्ञानी था,.... मिथ्यादृष्टि था। दर्शनमोह का उदय और उसमें जुड़ान। इस स्वभाव की ओर जुड़ान होना चाहिए, उसे छोड़कर इसने भावक जो मोह, उसकी ओर जुड़ान करके भाव्य जो मिथ्यात्वभाव, वह उसके कारण अज्ञानी था। आहाहा!

वह श्री गुरुओं के उपदेश से.... आहाहा! यह तो उसमें आया है न? जीव मरणतुल्य हो गया है। वहाँ ऐसा आया है। जीव को मरणतुल्य कर डाला है, कहते हैं। दया, दान, व्रत के परिणाम, राग से मुझे लाभ हो, यह जीव को मार डाला है, कहते हैं। मरणतुल्य किया है, उसमें है। उसमें वापस ऐसा कहा है तीर्थंकर के उपदेश से यह समझाया है, ऐसा है। समझ में आया?

श्रोता - २८

पूज्य गुरुदेवश्री - २८, २८ (कलश) शुरुआत, शुरुआत। यह रहा देखो! २८ - 'परन्तु कर्म संयोग से ढँका हुआ होने से मरण को प्राप्त हो रहा था।' भगवान जीवित ज्योत अन्दर ज्ञान और आनन्द के नूर के प्रकाश के पुंजवाला, परन्तु उसे मोह में राग मेरा और पुण्य मेरा और ऐसे भाव से उसे मार डाला अर्थात् मानो मैं हूँ ही नहीं, अजीव ही है। मुझे तो दूसरा कहना था, यहाँ गुरु का उपदेश है न!

यह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थंकर का उपदेश सुनने से मिटती है। यहाँ तो यह... आहाहा! गुरु भी तीर्थंकर का उपदेश है, वही कहते हैं। आहाहा! भगवान जीवित ज्योति चैतन्य जागृत अवस्था से भरपूर भगवान को मैंने राग और दया, दान के विकल्प से और निमित्त से मुझे लाभ होता है, ऐसा करके अपने जीवत्व की ज्योति को इसने हनन कर डाला। आहाहा! ऐसी जो मिथ्यात्वदशा, वह भ्रान्ति / मिथ्यात्व अर्थात् भ्रान्ति परम गुरु श्री तीर्थंकर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का उपदेश सुनने से मिटती है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहा — **गुरुओं के उपदेश से और स्व-काललब्धि से ज्ञानी हुआ....** इससे पुरुषार्थ करने पर काललब्धि पक गयी। आहाहा! **तथा अपने स्वरूप को परमार्थ से जाना....** अपने स्वरूप को परमार्थ से जाना। वैसे तो स्वरूप तो शास्त्र के पठन में आया था इसे, अनन्त बार परन्तु यह परमार्थ से नहीं जाना था। आहाहा! सम्यग्दर्शन क्या चीज है? इसकी महिमा का लोगों को पता नहीं है.... इनने तो साधारण कर दिया कि हो गया — देव-गुरु की श्रद्धा करो... व्रत करो, तप करो, अपवास करो... मर गया कर-करके यह तो!

श्रोता - फिर कहता है डरो मत-डरो मत।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ; यह तो फिर भद्रिकरूप से कहे। बाहर में व्रत ले लो, और वस्त्र छोड़ दो और...

(अपने स्वरूप को) परमार्थ से जाना कि मैं एक हूँ,.... मूल पाठ है न ? **शुद्ध हूँ, अरूपी हूँ,....** ये तीनों ही ले लिये और **दर्शनज्ञानमय हूँ।...** गाथा का भाव लिया। **ऐसा जानने से....** ऐसा जानने से...

श्रोता – स्वसन्मुख होकर जानने से।

पूज्य गुरुदेवश्री – मोह का समूल नाश हो गया,.... मोह का 'समूल' नाश हुआ, मूल में से मिथ्यात्व का नाश हुआ। आहाहा!

श्रोता – नाश हुआ, यह हुआ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री – भावकभाव और ज्ञेयभाव से भेदज्ञान हुआ,.... भावकभाव अर्थात् कर्मभावक और उसके निमित्त से होती विकारी पर्यायें राग-द्वेष की, मिथ्यात्व आदि ऐसा भावकभाव और ज्ञेयभाव अर्थात् परज्ञेय, उनसे भेदज्ञान हुआ। राग से और ज्ञेय से पृथक् पड़ा। आहाहा! **अपनी स्वरूपसंपदा...** अपनी स्वरूपसम्पदा... इनसे भिन्न पड़ा तब हुआ क्या ? **अपनी स्वरूपसंपदा अनुभव में आयी;....** आहाहा! भगवान अनन्त आनन्द की लक्ष्मी अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति इत्यादि अन्तर इसके अनुभव में आये। आहाहा! यह अपनी लक्ष्मी की सम्पदा अनुभव में आयी। आहाहा! यह दया, दान की वृत्ति तो राग है, वह अपनी सम्पदा नहीं थी, वह तो विकार / विभाव है। आहाहा! कठिन काम!

श्रोता : स्पष्ट काम।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस कारण ये लोग बेचारे ऐसा कहते हैं — ऐई! सोनगढ़वालों ने तो व्यवहार उड़ा दिया। व्यवहार से होता है, यह नहीं रखा। भगवान! व्यवहार तो राग है बापू! आहाहा! राग से तो यहाँ पृथक् पड़ा तब लाभ हुआ। जिससे भिन्न पड़ना है, उससे लाभ होगा ?

बहुत कठिन काम! अभी प्ररूपणा बहुत बदल गयी है, उपदेश बदला... बनियों

को निवृत्ति नहीं मिलती, बनिये निवृत्त (नहीं होते) । पूरे दिन व्यापार । ऐई ! छोटाभाई ! पूरे दिन स्त्री-पुत्र और धन्धा, इसमें समय नहीं मिलता। घण्टे भर मिले तब सुनने जाये, मस्तिष्क नहीं, जो मिलता वह कहे - जय नारायण !

श्रोता - बनिया होशियार कहलाता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री - सब समझने जैसे होशियार हैं । आहाहा ! संसार के चतुर हों, बड़ी बातें करनेवाले, धन्धे के और ऐसे बड़े उद्योगपति और ऐसे के ऐसे । मूर्खता में ये सब बड़े हैं । आहाहा ! कहो, चन्द्रकान्तभाई !

लो, ये सब बनिये ढाई-ढाई हजार के वेतन को ऐसो... ऐसो ऐसो में हैं न ये ? यह कम्पनी बदल गयी, एसपी । सरकार की बदल गयी । आहाहा !

यहाँ अपने स्वरूप की सम्पदा अनुभव में आयी, **तब फिर पुनः मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है ? नहीं हो सकता है ।** यह सब टीका और भावार्थ पूरा हुआ । हो गया समय, लो !

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)